अध्याय - 4

उपनिवेशवाद एवं जनजातीय समाज

पिछले अध्याय मे आपने अंग्रेजों की लगान व्यवस्थाओं तथा कृषि के क्षेत्र में आ रहे बदलावों के बारे में जाना। आपने यह भी जाना कि किसानों, जमींदारों व गाँव के अन्य लोगों पर उनका क्या प्रभाव पड़ा। भारत के कई इलाकों में उनकी इन नीतियों के खिलाफ किसानों के संघर्ष की शुरूआत के बारे में आपने जाना। अब इस अध्याय में आप भारत के वनों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समाज के लोगों के जीवन पर अंग्रेजी शासन की नीतियों से पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जानेंगे।

जनजाति बहुल क्षेत्रों को इंगित करता हुआ भारत का मानचित्र

जनजातीय समाज का जीवन

जनजातीय समाज के लोग आम भाषा में 'आदिवासी' भी कहलाते हैं। ऐसा इसलिए कहा जाता है कि वे इस महाद्वीप में सबसे पुराने समय से रहने वाले लोग हैं। प्राचीनकाल से ही उनका जीवन पूरी तरह से वनों पर निर्भर था। उनके गाँव बस्तियाँ आमतौर पर जंगलों के बीच या आस पास होते थे। उनके दैनिक उपयोग की अधिकांश जरूरतों की पूर्ति जंगलों से ही होती थी। हमेशा से ही ये आदिवासी पूरी स्वच्छन्दता से वन संसाधनों का उपयोग करते आ रहे थे। वे जंगलों को साफ कर खेती योग्य जमीन तैयार करते थे। समतल क्षेत्र में वे हल से खेती करते थे। यहाँ वे धान, दलहन एवं मक्का उपजाते थे। लेकिन जो पहाड़ी क्षेत्रों में रहते थे, उनकी खेती का तरीका अलग था। उसे 'झूम खेती' कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वे जंगल के किसी भाग को काट–छांट कर साफ करते थे। दो–तीन वर्षों तक उस जगह पर खेती करने के बाद जब उस जगह की उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाती थी तब वे किसी और स्थान पर यही प्रक्रिया दोहराते थे। कुछ वर्षों तक परती छोड़ देने के बाद पहले की जगह पर वापस जंगल उग जाता था। इससे उनके खेती का काम भी हो जाता था और जंगल को भी कोई नुकसान नहीं होता था। इस विधि को 'घुमंतु कृषि विधि' के नाम से भी जाना जाता है।

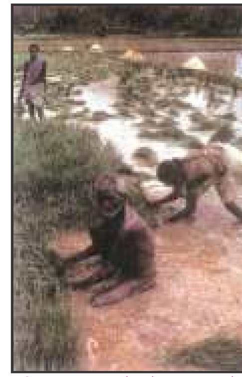

चित्र 1 – जंगलों को साफ करके खेती करते हुए आदिवासी

चित्र 2 – खेती पशुओं का उपयोग करता हुआ आदिवासी

जंगलों से उनकी अन्य दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो जाती थी। जैसे जलावन के लिए लकड़ियाँ, भोजन के लिए कंद–मूल, फल, शहद, आदि या फिर जड़ी–बूटियां उन्हें बड़ी आसानी से मिल जाती थीं। इन सबके अतिरिक्त वे पशुपालन भी किया करते थे, जिनका चारा भी उन्हें जंगलों से मिल जाता था। उनके घर भी जंगल की लकड़ियों के ही बने होते थे। अपनी जरूरतों के इस्तेमाल के अलावा वे जंगल से प्राप्त होने वाली कुछ

वस्तुओं, जैसे शहद, जड़ी–बूटियां, कुछ खास तरह के फल, इत्यादि को पास के बाजार में बेचकर अपनी छोटी–मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया करते थे। आवश्यकता की जो वस्तुएं इन्हें जंगल में उपलब्ध नहीं होती थीं, जैसे नमक, कपड़े, आदि, उनकी खरीददारी भी वे पास के गाँवों के व्यापारियों से जंगल से प्राप्त इन्हीं वस्तुओं के बदले में किया करते थे। हालांकि इसके लिए उन्हें काफी ऊँची कीमत चुकानी पड़ती थी।

चित्र 3 – जंगल से लकड़ी काटकर और पत्ता चुनकर घर जाते हुए आदिवासी

जनजातीय समाज के लोग भोजन के लिए कुछ छोटे जानवरों जैसे हिरण, तीतर तथा अन्य पक्षियों का शिकार भी करते थे। शिकार का साधन तीर–धनुष या अन्य छोटे हथियार होते थे। मगर ज्यादातर उनका भोजन जंगलों से प्राप्त कन्द–मूल, फल और अनाज ही होता था।

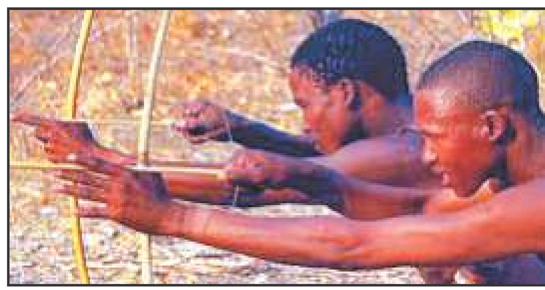

चित्र 4 – तीर धनुष से शिकार करते हुए आदिवासी

इनके उद्योग–धन्धे भी जंगलों पर ही आधारित थे। हाथी दांत, बांस तथा कुछ धातुओं पर की गई उनकी कलाकारी दूसरे समुदायों में भी काफी पसंद की जाती थी। कुछ इलाकों में रबर, गोंद, आदि चीजें उन्हें जंगलों से मिलती थीं, उसका भी वे व्यापार करते थे। आगे

चित्र 5 – मणिपुर में जेलियांग जनजाति के द्वारा तैयार किया गया तकिया का ग़िलाफ़

चित्र 6 – अरूणाचल प्रदेश की जनजाति महिलाओं द्वारा परम्परागत हथकरघा पर बुनाई

चलकर कुछ जनजातीय समुदायों ने लाख और रेशम उद्योगों को भी अपनाया। वे रेशम और लाह/लाख के कीड़े पालते और बाद में उसे बाहर के व्यापारियों से बेच देते थे। आमतौर पर इन गतिविधियों में उन्हें ज्यादा फायदा नहीं होता था क्योंकि व्यापारी उनकी चीजें बहुत कम कीमत पर खरीदते थे, जबकि उन वस्तुओं के वास्तविक मूल्य काफी अधिक होते थे। इन सबके अतिरिक्त आदिवासी महिलाएँ घरों में चटाई बनाने, बुनाई करने एवं वस्त्र बनाने का काम भी करती थीं।

जनजातीय समाज के लोग जंगल का उपयोग किन–किन चीजों के लिए करते थे? क्या उनके उधोग को विकसित करने में भी जंगल की भूमिका थी?

इस तरह सदियों से पूरी तरह से जंगलों पर निर्भर रहने के बावजूद इनकी गतिविधियों से जंगलों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता था बल्कि वे हमेशा उसकी सुरक्षा करते थे। जंगल के बाहर की दुनिया से उनका संबंध बहुत ज्यादा नहीं था और वे अपनी शांत और सरल जिंदगी से संतुष्ट थे। लेकिन उनकी ये संतुष्टि अंग्रजों के आने के बाद बहुत दिनों तक बनी नहीं रही।

अंग्रेजों द्वारा स्थापित व्यवस्थाओं तथा नियमों का जनजातीय समाज पर प्रभाव

हमने पिछले पाठ में देखा है कि किस तरह अंग्रेजी सरकार के अधिकारी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के प्रयास में लगे थे। इसके तहत भूराजस्व व्यवस्था में उनके द्वारा किये गए बदलाव से आप पिछले पाठ में परिचित हुए हैं। आगे इस प्रयास के अंर्तगत वे जंगलों व उसके आस–पास रहने वाले जनजातीय समाज के गाँवों और बस्तियों तक भी पहुंच गए। इसके पीछे अंग्रेजी सरकार का उद्देश्य था, जनजातीय क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित करते हुये भूमि से लगान वसूल करना। परंपरागत रूप से इस समाज के लोगों का यह मानना था कि जंगलों को साफ करके उनके पूर्वजों ने उसे खेती के लायक बनाया है, इसलिए जमीन के मालिक वे स्वयं हैं। इसके लिए उन्हें किसी को किसी तरह का लगान या कर देने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन नई लगान व्यवस्थाओं के तहत उन सबके द्वारा जोती जानी वाली जमीनों को भी सरकारी दस्तावेजों में दर्ज किया गया और जैसा कि बाकि

किसानों के साथ हुआ था, उनके ऊपर भी सालाना लगान की राशि तय कर दी गई। लगान की यह राशि उनके लिए इतनी ज्यादा होती थी कि अक्सर उन्हें लगान चुकाने के लिए कर्ज लेना पड़ता था। कर्ज चुका पाना उनके लिए और भी मुश्किल होता था। इस तरह धीरे–धीरे उनकी जमीनें या तो नीलाम होने लगीं या फिर महाजनों के कब्जे में चली जाने लगीं। इसका एक और सीधा असर झूम खेती करने वाले लोगों पर पड़ा। अब उन्हें अलग–अलग जमीनों पर खेती करने की आजादी नहीं रही।

इनकी बस्तियों तक सरकारी कर्मचारियों के पहुंचने का एक दूसरा असर भी हुआ। कर्ज लेने वालों की संख्या बढ़ने के कारण अब उनके क्षेत्रों में गैर आदिवासी सेठ, महाजन एवं सूदखोरों का भी प्रवेश हुआ। ये महाजन व साहुकार हमेशा इस प्रयास में रहते कि किस तरह इनकी जमीनों को हथियाया जाए और इन्हें अपना बंधुआ मजदूर बनाया जाए।

अंग्रेजों के समय एक और नई बात हुई। जंगल की लकड़ी का व्यापार अचानक ही बड़ी तेजी से बढ़ा। उस समय कोलकाता, मुंबई और चेन्नई (उस वक्त कलकत्ता, बंबई और मद्रास) जैसे बड़े–बड़े शहर बस रहे थे, मीलों लंबी रेल लाईनें बिछाई जा रही थीं और बड़े–बड़े जहाज बनाए जा रहे थे। इन सबके लिए लकड़ियों की जरूरत थी।

चित्र 7 – जंगल की कटाई करवाकर स्लीपर तैयार करते अंग्रेज अधिकारी

सन् 1850 के बाद भारत में अंग्रेजों ने रेलवे की शुरूआत की थी। तब से लेकर 1910 तक करीब पचास हजार किलोमीटर रेल लाईनें बिछायी जा चुकी थीं। रेल लाईनों के स्लीपरों तथा रेल के डिब्बों के लिए लकड़ियों की आवश्यकता थी। इसके लिए अंग्रेजों ने बड़े पैमाने पर जंगलों की कटाई करानी शुरू कर दी।

इसके अलावा इमारतों, खदानों व जहाजों के लिए भारी मात्रा में लकड़ी काट कर बेचा जाने लगा। यह काम लकड़ी के व्यापारी और जंगल के ठेकेदार किया करते थे। अंग्रेज सरकार को भी इस लकड़ी के व्यापार से बड़ा फायदा होता था। सरकार जंगलों को काटने का ठेका नीलाम करती थी। ठेकेदारों से मिले पैसों से सरकार को बहुत आमदनी होती।

इन्हें भी जानें
स्लीपर–लकड़ी का तख्ता जिसके ऊपर रेल की पटरियां बिछाई जाती हैं।

जब ठेकेदार बेतहाशा जंगल काटने लगे और जंगल तेजी से खत्म होने लगे तब अधिकारियों को चिंता होने लगी। अगर सारे जंगल कट जाएंगे तो रेल, जहाज और मकानों के लिए लकड़ियां कहां से आयेंगी। तब उन्होंने जंगलों में नए पौधे लगाने शुरु किये। मगर उन्होंने ऐसे पौधे लगाने शुरु किए जिनकी बाजार में मांग थी।

वन विभाग बना

तेजी से खत्म होते जंगल की समस्या हल करने के लिए अंग्रेज सरकार ने सन् 1864 में 'वन विभाग' की स्थापना की एवं सन् 1865 में 'वन अधिनियम' भी बनाया गया। वन विभाग का काम था जंगल की कटाई पर निगरानी रखना और नए जंगल लगाना। वन आधिनियम के तहत नए वृक्षारोपण की सुरक्षा के लिए तथा पुराने जंगलों को बचाने के लिए ढेरों नियम बनाए गए। इन सबका असर यह हुआ कि आम लोगों और आदिवासियों का जंगलों पर जो परंपरागत अधिकार था वो छिनने लगा। वे अब अपनी मर्जी से लकड़ी काटने, जानवर चराने, फल–फूल इकट्ठा करने या शिकार करने लिए जंगलों में नहीं जा सकते थे। यहां तक कि उनका जंगल में प्रवेश भी वर्जित कर दिया गया। अभी तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आदिवासी काफी कुछ जंगलों पर निर्भर थे लेकिन अब उस पर अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया।

सन् 1878 में अंग्रेजों ने एक और कानून बनाया। इसके तहत जंगलों को दो भागों में बांटा गया। बड़े जंगलों को सरकारी जंगल या आरक्षित (रिजर्व) जंगल धोषित कर के सरकार ने वहाँ अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। अब आदिवासी वहाँ लकड़ियाँ चुनने या

वन उत्पादों को प्राप्त करने नहीं जा सकते थे। वन विभाग के कर्मचारियों या व्यापारियों को ही वहाँ जाने की अनुमति थी। इसी कानून के तहत जंगल के बाहरी इलाकों को तथा कुछ अन्य जंगलों को संरक्षित जंगल कहा गया जिसमें लोगों को जाने की छूट थी। मगर वहां से वे केवल अपने काम की चीजें ही ला सकते थे। वे वहां पेड़ नहीं काट सकते थे या दो दिन से ज्यादा अपने जानवर भी नहीं चरा सकते थे।

इन सब कानूनों व व्यवस्थाओं का असर यह हुआ कि आदिवासी लोगों का जीवन बहुत मुश्किल हो गया। सदियों से जिस तरह के जीवन जीने के वे आदि थे वह अब संभव नहीं रहा। इसलिए अब नए काम धंधों की तलाश में उन्हें जंगल और अपनी बस्तियों से बाहर आना पड़ा। उन दिनों वन विभाग का ज्यादातर काम ठेकेदारों के द्वारा ही किया जाता था। कुछ ठेकेदार वन विभाग के लिए लकड़ी काटने का काम करते थे तो कुछ जंगलों के आस–पास सड़क बनाने का काम। आदिवासी लोगों के पास अब अपना कोई काम धंधा तो था नही ंतो उन्होंने इन ठेकेदारों की नौकरी ही कर ली। यहां उन्हें जो मजदूरी मिलती उससे उनका गुजारा तो हो जाता मगर अपनी अन्य जरूरतों के लिए उन्हें ठेकेदारों और साहुकारों के आगे कर्ज के लिए हाथ फैलाना पड़ता।

साहुकारों से लिया गया कर्ज चुका पाना उनके लिए आसान नहीं होता। ये आदिवासी बहुत कम बल्कि नहीं के बराबर पढ़े–लिखे होते थे, जिसकी वजह से ये सूद की रकम या महाजन ने उन पर कितने रकम का बोझ डाला इसे नहीं समझ पाते थे। सूद की रकम नहीं चुका पाने की वजह से उन्हें जमीन के साथ–साथ अपने पशुओं और हल–फाल आदि से भी हाथ धोना पड़ता था। आखिर में कर्ज नहीं चुका पाने की स्थिति में उनके पास साहुकार का बंधुआ मजदूर बनने के अलावा कोई चारा नहीं होता।

ठेकेदारों व महाजनों के अत्याचार से बचने के लिए कई इलाकों के आदिवासियों को काम की तलाश

> जानकारी
>
> बेगारी :– बिना वेतन या मजदूरी के काम करना।

> जानकारी
>
> बंधुआ मजदूर :– कर्ज चुकाने के लिए बिना वेतन के मालिक के जमीन पर तब तक काम करते रहना जबतक कि कर्ज की रकम सूद समेत न चुक जाए।

में अपने निवास स्थल से दूर की जगहों पर भी जाना पड़ता था। वे असम के चाय बगानों तथा हजारीबाग एवं धनबाद के कोयला खदानों में भी काम करने के लिए जाया करते थे। ऐसी जगहों पर उन्हें ठेकेदारों के माध्यम से काम पर रखा जाता था। यहां भी ये ठेकेदार उन्हें बहुत ही कम मजदूरी देते थे और अधिक से अधिक मुनाफा अपने पास रख लेते थे।

लगान बन्दोबस्त एवं जंगल अधिनियम के द्वारा अंग्रेजों ने आदिवासियों के साथ कैसा व्यवहार किया? यदि आप उनमें से एक होते तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होती?

ठेकेदारों व महाजनों के अतिरिक्त इसी समय उन्हें शिक्षा देने के उद्देश्य से ईसाई मिशनरियों का भी उनके इलाके में आगमन हुआ। ईसाई मिशनरियों का वास्तविक उद्देश्य जनजातीय क्षेत्रों पर अपना वर्चस्व स्थापित करना तथा उनका धर्म परिवर्तन करना था। उन्होंने आदिवासी के धर्म तथा उनकी संस्कृति की आलोचना करनी शुरू किया और बहुत से आदिवासियों का धर्म परिवर्तन भी करा डाला। ईसाई मिशनरियों ने उन्हें यह प्रलोभन दिया कि वह सेठ, साहुकारों एवं महाजनों से उनकी रक्षा करेगी। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। ये मिशनरियाँ सेठ, साहुकार, जमींदार एवं बिचौलिए के साथ मिलकर आदिवासियों का खूब आर्थिक एवं शारीरिक शोषण करती थी। यही कारण था कि अंग्रेजों एवं गैर आदिवासियों के खिलाफ जनजातीय समाज के लोगों ने जगह–जगह पर अस्त्र–शस्त्र उठा लिए।

आदिवासियों की एक खास बात यह थी कि वे सभी गैर आदिवासी या बाहरी लोगों को अपना दुश्मन या शोषक नहीं मानते थे और उनके विरोधी नहीं थे। वैसे गरीब गैर आदिवासी जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उनके सहायक की भूमिका निभाते थे, उनसे उनका गहरा सामाजिक संबंध था। ये अंग्रेजों के खिलाफ गोलबन्दी करने में इनके मददगार भी होते थे।

जनजातीय विद्रोह का स्वरूप

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के लगभग सभी इलाकों में आदिवासियों ने अंग्रेजों एवं उनके सहयोगी गैर आदिवासियों के घुसपैठ एवं शोषण के खिलाफ लड़ाई शुरू कर दी। भारत में सबसे बड़ी संख्या भील जनजाति की है। गुजरात, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, राजस्थान,

त्रिपुरा, कर्नाटक आदि राज्यों में इन्होंने महाजनों एवं साहुकारों के शोषण का विरोध करते हुए उनके नियमों को मानना बंद कर दिया। गोंडवाना के गोंड लोगों ने अपनी जमीन की सुरक्षा, अपने उत्पाद के लिए उचित मूल्य के भुगतान, विभिन्न वन संबंधी गतिविधियों से बिचौलिए एवं ठेकेदारों को दूर रखने, साहुकारों द्वारा शोषण को रोकने आदि के लिए विद्रोह आरम्भ किया। उड़ीसा में कंध जाति का विद्रोह भी जमींदारों एवं साहुकारों के शोषण के विरुद्ध था। उत्तर पूर्व में विद्रोह का स्वरूप कुछ अलग ही था। यहाँ के बहुसंख्यक आदिवासी अफीम की खेती करते थे। अंग्रेजों ने अफीम की खेती पर बढ़े हुए मुनाफे को देखकर उसे अपने नियंत्रण में लेने का प्रयास किया तथा सरकारी इजाजत के बिना अफीम की खेती पर रोक लगा दी

लेकिन सबसे अधिक विद्रोह की ज्वाला तत्कालीन बिहार के संथाल परगना एवं छोटानागपुर प्रमंडल में धधक रही थी। यहाँ के आदिवासी सेठ–साहुकार, महाजन एवं गैर आदिवासी बिचौलिए के शोषण के शिकार तो थे ही, साथ ही अंग्रेजों द्वारा उनलोगों को दिए जा रहे प्रोत्साहन के भी खिलाफ थे। ईसाई मिशनरियों की घुसपैठ भी उनके विरोध का एक बड़ा कारण था।

तत्कालीन समाचार पत्र कलकत्ता रिवयू में अंग्रेजों द्वारा संथालों के शोषण पर छपा लेख :–

'जमींदार, पुलिस, राजस्व विभाग और अदालतों ने संथालों पर बेइंतहा जुल्म ढाए। उनकी जमीन जायदाद छीन ली। हर कदम पर संथालों को अपमानित किया जाता था और मारा–पीटा जाता था। संथालों को कर्ज देकर 50 से 500 फीसदी की दर से ब्याज वसूला जाता था। धनी और ताकतवर लोग जब मन में आता था मेहनतकश संथालों की खड़ी फसलों पर हाथी दौड़ा दिए करते।

दिकू – गैर आदिवासी सेठ एवं महाजन, जो अधिक ब्याज पर ऋण देते थे और उनका शोषण करते थे। ये व्यापारी एवं बिचौलिए का काम करते थे।

यह अत्याचार आम बात हो गयी थी। दिकू और सरकारी कर्मचारी भी संथालों की निगाह में अत्याचारी थे। ये लोग संथालों से बेगारी कराते थे।

आरम्भ में इन आदिवासियों ने अपने–अपने नेता के नेतृत्व में लगान की रकम देना बंद कर दिया और महाजनों व साहुकारों के आदेशों और नियमों को मानने से इन्कार कर दिया। परन्तु जब गैर आदिवासियों के पक्ष में अंग्रेजी सरकार अपनी सेना के साथ खड़ी हो गई और जोर जबरदस्ती करने लगी, तब ये आदिवासी अंग्रेजों के खिलाफ अस्त्र–शस्त्र लेकर खड़े हो गए। कुछ आदिवासी समूहों ने अपना उद्देश्य अपने इलाके से अंग्रेजी राज को समाप्त करना बना लिया। तत्कालीन बिहार में संथाल विद्रोह, मुंडा विद्रोह एवं ताना भगत आन्दोलन ने आदिवासियों से जमीन छीनने का सिलसिला समाप्त कर जनजातीय समाज को संरक्षण प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त किया। उत्तर–पूर्व भारत में भी खसिया, गारो एवं नागा जनजातियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। ये सभी विद्रोह संगठित विद्रोह थे।

क्या जनजातीय विद्रोह सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह था? इन विद्रोहों के लिए सेठ साहुकार एवं महाजन कहाँ तक जिम्मेवार थे?

यहां आप मुख्य रूप से छोटानागपुर के मुंडा विद्रोह एवं उत्तर–पूर्व में नागा जनजाति का जेलियांगरांग आन्दोलन के विषय में पढ़ेंगे।

बिरसा मुंडा एवं मुंडा विद्रोह

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर सन् 1874 ई. को छोटानागपुर प्रमंडल के तमाड़ थानान्तर्गत उलिहातु गाँव के निकट एक छोटे से क्षेत्र 'चलकद' मे हुआ था। उसके पिता का नाम सुगना मुंडा एवं माता का नाम कदमी था। बिरसा की शिक्षा दीक्षा चाईबासा के एक जर्मन मिशन स्कूल में हुई थी। शुरू में कुछ मुंडाओं के साथ मिलकर उसने ईसाई धर्म भी स्वीकार किया, लेकिन बाद में ईसाई धर्म से असंतुष्ट होकर फिर मुंडा बन गया। उसके मन में अंग्रेजों एवं जमींदारों के प्रति आक्रोश की भावना ने ही मुंडा विद्रोह को जन्म दिया।

सन् 1895 ई. में बिरसा को उसके कुलदेवता 'सिंगबोगा' से एक नये धर्म के प्रतिपादन की प्रेरणा मिली, जिसके अनुसार उसने अपने आपको भगवान का अवतार घोषित किया और अंग्रेजीं शासन का अंत करने का बीड़ा उठा लिया। इसके लिए उसने मुंडाओं को आदर्श एवं पवित्र जीवन जीने का संदेश दिया। कुछ ही दिनों में उसके अनुयायियों की संख्या अधिक हो

गयी और वे बिरसा को पैगम्बर मानने लगे। बिरसा ने प्रचार किया कि अब मुंडा राज शुरू हो गया है और महारानी विक्टोरिया का राज समाप्त हो गया है। उसने मुंडाओं को आदेश दिया कि किसी को भी राजस्व नहीं दें और जमीन का उपभोग बिना राजस्व दिए ही करें। अंग्रेजी सरकार ने इस विद्रोह के कारण बिरसा को पकड़ कर राँची जेल भेज दिया और उस पर बगावत का आरोप लगाया गया। लेकिन जेल से छुटने के बाद बिरसा ने फिर से लोगों का समर्थन प्राप्त करना शुरू किया तथा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जन संघर्ष के लिए मोर्चा बनाना शुरू किया। लोगों को तीर–धनुष की शिक्षा दी जाने लगी और रात में सभाओं का आयोजन किया जाने लगा। 25 दिसम्बर सन् 1899 को बिरसा ने पहला आक्रमण ईसाई मिशनरियों पर किया, जिसका उद्देश्य ईसाई बने मुडांओं को आतंकित कर अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा करना था। इसमें बहुत से लोग मारे गए, बहुतों को बन्दी बना लिया गया। लेकिन बहुत जल्द बिरसा गिरफ्तार कर लिया गया और 2 जून सन् 1900 ई. को हैजा की बीमारी से बिरसा की मृत्यु राँची जेल में ही हो गयी।

चित्र 8 – बिरसा मुंडा

बिरसा मुंडा ने स्वयं को भगवान का अवतार क्यों घोषित किया?

बिरसा मुंडा की मौत के बाद भी मुंडा आंदोलन थमा नहीं, बल्कि जनजातीय क्षेत्रों में इसने और गहरी जड़ें जमा लीं। अंततः छोटानागपुर के तत्कालीन आयुक्त की सिफारिश पर सन् 1902 में गुमला तथा 1905 में खूंटी अनुमण्डल का गठन कर दिया गया ताकि समस्याओं को नजदीक से समझा जा सके। आदिवासी किसानों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए 'छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908' बनाया गया। इसके द्वारा जनजातीय क्षेत्र की भूमि का गैर आदिवासियों को हस्तांतरण निषेध कर दिया गया।

इस प्रकार मुंडा आन्दोलन ने ब्रिटिश सरकार को झुका दिया। डेढ़ सौ वर्षों से चला आ रहा

जमीन छीनने का सिलसिला समाप्त हुआ और जनजातीय समाज को संरक्षण प्राप्त हुआ। इस आन्दोलन ने भारत में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को भी प्रभावित किया। उस समय के समाचार पत्र, जैसे इंगलिशमैन, पायोनियर एवं स्टेट्समैन आदि में इस आन्दोलन को कुचलने की ब्रिटिश सरकार की नीति की काफी आलोचना की गयी। बिरसा को भगवान मानकर छोटानागपुर के जनजातीय समाज के लोगों ने उसके सपने को साकार करने का बीड़ा उठा लिया। अब उन्हें सिर्फ जमीन ही नहीं, अपितु अंग्रेजों से मुक्ति भी प्राप्त करना था।

मुंडारी लोकगीत जिसमें बिरसा मुंडा को आज भी याद किया जाता है :–

मायोम ताम दो बिरसा
बाहो रेको टिका–सुंदरी केड।
जंग ताम दो बिरसा
दिशुम होड़ो को बुलंग केड।
अबेना रीका को दो बिरसा
दिशुम होड़ो को ताज्ज केड।।

(हे बिरसा, तेरे खून का सिर में टीका लगाया। हे बिरसा तेरी हड्डी का परदेशी लोगों ने नमक बनाया। हे बिरसा, तेरे सत्कार्य को विदेशियों ने अपना लिया।)

इसी कारण बिरसा जनजातीय क्षेत्र में भगवान के रूप में पूज्य है –

तमाड़ परगना गेरेडे उली हातु
बिरसा भगवान ए जोनोम लेना

मुंडा विद्रोह के बाद भी छोटानागपुर में विद्रोह की आग दबी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ आन्दोलन चलता रहा, जो बाद में कांग्रेस के नेतृत्व में चलाए जा रहे राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गया।

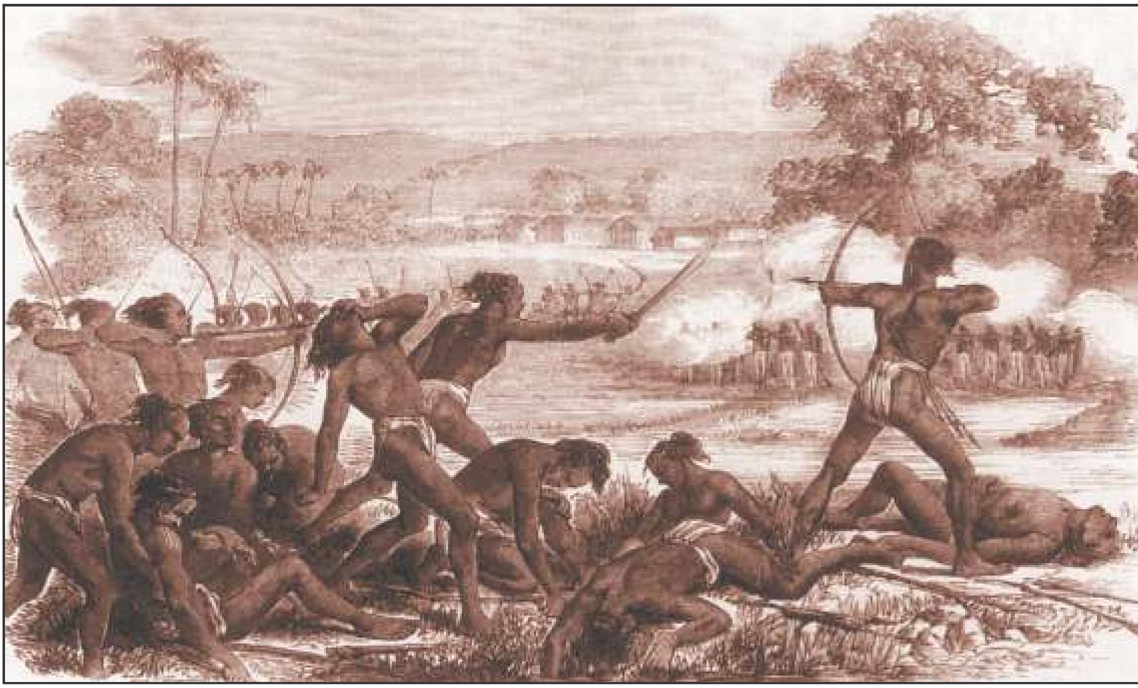

चित्र 9 – युद्ध करते हुए आदिवासी

उत्तर पूर्व भारत में जेलियांगरांग आन्दोलन

उत्तर पूर्वी भारत में अंग्रेजों के खिलाफ नागा जनजाति ने सबसे प्रबल विद्रोह किया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस समुदाय के लोगों ने कई बार विद्रोह किया, लेकिन सन् 1891 ई. में जब मणिपुर के युवराज टिकेन्द्र जीत सिंह को फांसी पर चढ़ाकर अंग्रेजों ने उस पर अपना आधिकार कर लिया तब नागा जाति का विद्रोह जोर पकड़ा। इस समय मणिपुर में जेमेई, लियांगमेई एवं रांगमेई नामक नागा जनजाति की बहुलता थी। राजनैतिक एवं सामाजिक एकता की स्थापना, विदेशी घुसपैठ से सुरक्षा तथा धार्मिक सुधार हेतु जादोनांग नामक एक रांगमेई जनजाति नेता के नेतृत्व में सन् 1920 में जनजातीय लोगों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। उपरोक्त तीन जनजातियों के नाम पर इस आन्दोलन को 'जेलियांगरांग' आन्दोलन का नाम दिया गया। जादोनांग ने सर्वप्रथम इन तीनों जनजातियों में एकता स्थापित कर अंग्रेजों एवं गैर आदिवासियों को बाहर खदेड़ने का एक राजनैतिक कार्यक्रम बनाया। खास बात यह थी कि इनका आन्दोलन आगे चलकर गाँधीजी द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ जुड़ गया।

जादोनांग ने नागा जनजाति के लिए क्या किया?

जादोनांग ने अपनी तेरह वर्षीय चचेरी बहन गिंडाल्यू के साथ मिलकर एक भूमिगत आन्दोलन की योजना बनायी और नागा राज्य की स्थापना का प्रयास शुरू किया। इसमें जादोनांग को काफी सफलता मिल गयी। लेकिन अंग्रेजी सरकार को इसकी भनक मिल गयी। अतः एक हत्या के मामले मे फंसा कर 29 अगस्त 1929 को अंग्रेजों ने उसे फांसी की सजा दे दी। आन्दोलन इसके बावजूद भी थमा नहीं। गिंडाल्यू ने इसे जारी रखा। अंग्रेजों द्वारा सन् 1932 में इस आन्दोलन को भी दबा दिया गया और गिंडाल्यू को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गयी। सन् 1947 में आजादी मिलने के बाद उसे रिहा किया गया। गिंडाल्यू ने अंग्रेजी सरकार की दमनकारी कानूनों की अवज्ञा का भाव जनजातियों में जगाया और इस तरह वह गाँधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की मुख्य धारा से अपने आन्दोलन को जोड़ने में सफल रही।

चित्र 9 – रानी गिंडाल्यू

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय समाज के लोगों के आर्थिक विकास के लिए बहुत सारे नियम बनाए गए। उन्हें राष्ट्र की धारा में जोड़ने के लिए अनेक उपाय किए गए, फिर भी उनमें असंतोष की लहर व्याप्त रही। इसका मुख्य कारण भौगोलिक एवं राजनैतिक था। यद्यपि संविधान में जनजातियों के लिए शैक्षणिक संस्थान एवं नौकरी में आरक्षण की व्यवस्था कर दी गयी थी, फिर भी उनके असंतोष थमे नहीं। नागा जनजाति किसी भी कीमत पर अपनी सांस्कृतिक पहचान को खोना नहीं चाहती थी, अतः बाध्य होकर 1 दिसम्बर, 1963 को अलग नागालैंड राज्य की स्थापना की गई। संविधान में उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए विशेष व्यवस्था की गयी। जिसके अनुसार असम, नागालैंड, त्रिपुरा, मणिपुर आदि में आदिवासियों को उनके आन्तरिक मामले में स्वायत्तता दी गयी। संसद द्वारा पारित कानून यहाँ तब तक लागू नहीं होता है जबतक कि विधानमंडल की विशेष समिति उसे अनुमोदित न कर दे।

संथाल परगना एवं छोटानागपुर में भी जनजातीय विद्रोह नहीं थमा और वे अलग क्षेत्रीय

पहचान के लिए लगातार संघर्ष करते रहे। परिणाम स्वरूप 15 नवम्बर सन् 2000 को बिहार का विभाजन करके झारखंड राज्य बना दिया गया।

जनजातीय विद्रोहों में महिलाओं की भूमिका

उपनिवेशवाद के खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह में आदिवासी महिलाओं की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही है। ये महिलाएँ सैनिक कार्रवाई करने से लेकर विद्रोह का नेतृत्व करने तक के कार्य में पुरुषों का साथ देती थीं। संथाल विद्रोह में राधा और हीरा नाम की महिलाओं ने गड़ाँसा, कुल्हाड़ी और लाठी जैसे अस्त्रों का प्रयोग किया था जिसके लिए अंग्रेजी सरकार ने उन्हें कैद कर लिया था। सिद्धू की बहन फूलो और झानो ने अंग्रेजी कैम्प में घुसकर 21 सैनिकों को तलवार से मार गिराया था। सन् 1899 में मुंडा विद्रोह के समय बिरसा मुंडा की महिला साथी 'साली' और चम्पी का उदाहरण मिलता है, जिन्होंने सैन्य संगठन कर बिरसा का साथ दिया था। बिरसा के दोस्त गया मुंडा की पत्नी 'मानी बुई' बेटी– 'थीगी', 'नागी' और लेम्बू तथा उसकी दो बहुओं ने अंग्रेजों के खिलाफ गड़ाँसा, तलवार और लोहे के छड़ का प्रयोग किया।

ताना भगत आन्दोलन में भी जतरा भगत के बाद लीथो उराँव नाम की जनजातीय महिला ने नेतृत्व संभाला। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में गिंडाल्यू इसका अपूर्व उदाहरण है।

भारत के अन्य क्षेत्रों में, जैसे गोंड जनजाति के क्षेत्र मे गोंड महिला राजमोहिनी देवी ने 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध से 1950 के दशक के आरम्भ तक आंदोलन का नेतृत्व संभाला।

यद्यपि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा का अभाव था, फिर भी गैर आदिवासियों एवं अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ आदिवासी महिलाओं ने डटकर मुकाबला किया।

अभ्यास

आइए फिर से याद करें–

1. सही विकल्प चुनें।

(i) जनजातीय समाज के लोग आम भाषा में क्या कहलाते थें?

(क) हरिजन (ख) आदिवासी (ग) सिक्ख (घ) हिन्दू

(ii) दिकू किसे कहा जाता था?

(क) अंग्रेज (ख) महाजन (ग) गैर आदिवासी (घ) आदिवासी

(iii) बिरसा मुंडा किस क्षेत्र के निवासी थे?

(क) छोटानागपुर (ख) संथालपरगना (ग) मणिपुर (घ) नागालैंड

(iv) गिंडाल्यू ने अंग्रेजी सरकार की दमनकारी कानूनों को नहीं मानने का भाव जनजातियों में जगाकर गांधीजी के किस आंदोलन से जनजातिय आंदोलन को जोड़ने का सफल प्रयास किया?

(क) असहयोग आंदोलन (ख) सविनय अवज्ञा आंदोलन

(ग) भारत छोड़ो आंदोलन (घ) खेड़ा आंदोलन

(v) झारखंड राज्य किस राज्य के विभाजन के परिणामस्वरूप बना था?

(क) बिहार (ख) बंगाल (ग) उड़िसा (घ) मध्यप्रदेश

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ।

(क)	जादोनांग	(क)	मणिपुर
(ख)	बिरसा मुंडा	(ख)	उड़ीसा
(ग)	कंध जाति	(ग)	जेलियांगरांग आंदोलन
(घ)	टिकेन्द्र जीत सिंह	(घ)	ताना भगत आंदोलन
(ङ)	जतरा भगत	(ङ)	सिंगबोगा

आइए विचार करें–

(i) अठारहवीं शताब्दी में जनजातीय समाज के लिए जंगल की क्या उपयोगिता थी?

(ii) आदिवासी खेती के लिए किन तरीकों को अपनाते थे?

(iii) गैर आदिवासियों एवं अंग्रेजों के प्रति आदिवासियों का विरोध क्यों हुआ?

(iv) 'वन अधिनियम' ने आदिवासियों के किन अधिकारों को छीन लिया?

(v) ईसाई मिशनरियों ने आदिवासी समाज में असंतोष पैदा कर दिया कैसे?

(vi) बिरसा मुंडा कौन थे? उन्होंने जनजातीय समाज के लिए क्या किया?

(vii) अंग्रेज संथालों का शोषण किस तरह किया करते थे?

(viii) जादोनांग कौन था? उसकी उपलब्धियों के विषय में बताइए।

(ix) जनजातीय विद्रोह में महिलाओं की भूमिका का वर्णन करें?

(x) जनजातीय समाज की महिलाओं का घरेलू उद्योग क्या था?

आइए करके देखें–

(i) अंग्रेजी शासन के पूर्व जनजातीय समाज के लोगों का जीवन कैसा था? अंग्रेजों की नीतियों से उसमें क्या परिवर्त्तन आया? वर्ग में शिक्षक के साथ परिचर्चा करें।

(ii) उत्तर पूर्व भारत का जनजातीय विद्रोह भारत के अन्य भागों के जनजातीय विद्रोहों से किस तरह अलग था?